[2026] 1 एसी.सी.आर. 91 : 2026 आईएनएससी 7

निर्भय सिंह सुलिया
बनाम
मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य

(सिविल अपील क्रमांक 40/2026)
05 जनवरी 2026
(न्यायमूर्ति श्री जे.बी. पारदीवाला* एवं न्यायमूर्ति श्री के.वी. विश्वनाथन*)

विचारणीय बिंदु

क्या केवल तथ्यों के आधार पर, ज़मानत देने के इन चार न्यायिक आदेशों के आधार पर और इसके अतिरिक्त कुछ भी न होते हुए, प्राधिकारियों द्वारा अपीलकर्ता–न्यायिक अधिकारी को सेवा से हटाया जाना उचित था?

शीर्ष टिप्पणियाँ †

न्यायपालिका – जिला न्यायपालिका – न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही इस आरोप पर कि जमानत आदेश पारित करते समय बाहरी विचार प्रभावी थे – केवल जमानत प्रदान करने में गलत आदेश या विवेकाधिकार का गलत प्रयोग, अपने–आप में और इसके अतिरिक्त कुछ न होने पर, न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्रारंभ करने का आधार नहीं है – शिकायतकर्ता ने उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष अन्य बातों के साथ यह आरोप लगाते हुए शिकायत दर्ज की कि अपीलकर्ता–अपर जिला न्यायाधीश आबकारी अधिनियम के अंतर्गत उन मामलों में, जिनमें जब्त शराब की मात्रा 50 बल्क लीटर या उससे अधिक थी, जमानत देने के लिए अपने स्टेनो के माध्यम से रिश्वत ले रहे थे – अपीलकर्ता को 27 वर्षों की निष्कलंक सेवा के पश्चात केवल चार न्यायिक आदेशों के आधार पर, जिनके द्वारा उन्होंने कुछ पक्षकारों को जमानत पर रिहा किया था, सेवा से हटा दिया गया – उन चार आदेशों की तुलना चौदह अन्य जमानत आदेशों से की गई और यह पाए जाने पर कि उन चार आदेशों में धारा 59–क, मध्य प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1915 का उल्लेख नहीं किया गया था, यह माना गया कि यह सिद्ध हो गया है कि भ्रष्ट उद्देश्य से या किसी बाहरी/अनुचित विचार के कारण धारा 59–क, आबकारी अधिनियम के विपरीत जमानत अर्जियां स्वीकृत की गई – अपीलकर्ता ने सेवा से हटाने के आदेश तथा अपीलीय प्राधिकारी के आदेश को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर की और परिणामी लाभों सहित पुनर्नियुक्ति की प्रार्थना की – याचिका निरस्त – हस्तक्षेप :

अभिनिर्धारित: केवल इस कारण कि कोई आदेश गलत है या निर्णय में त्रुटि है, और इसके अतिरिक्त कुछ भी न हो, किसी न्यायिक अधिकारी को न तो विभागीय कार्यवाही की पीड़ा से गुजरने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए और न ही अभियोजन का सामना करना चाहिए – मात्र इस आधार पर कि कोई भिन्न निष्कर्ष संभव था, कदाचार का संकेत नहीं माना जा सकता – अनुशासनात्मक प्राधिकारी का यह दायित्व है कि वह अभिलेख से यह परीक्षण करे कि क्या कोई एक या अधिक ऐसी परिस्थितियाँ उभरकर सामने आती हैं, जो यह संकेत दें कि कदाचार के आरोप का आधार बनने वाला निर्णय न्यायिक शक्ति का ईमानदार प्रयोग नहीं था – अपीलकर्ता को केवल कुछ जमानत आदेशों के आधार पर, और इसके अतिरिक्त कुछ भी न होते हुए, कदाचार का दोषी ठहराया गया – अभिलेख पर ऐसा कोई भी सामग्री उपलब्ध नहीं है जिससे यह निष्कर्ष

निकाला जा सके कि उन जमानत आदेशों को पारित करने में कोई बाहरी या अनुचित विचार प्रभावी थे – यह परिकल्पना केवल इस आधार पर निर्मित की गई कि आदेश में विधिक प्रावधान का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया था – इसके अतिरिक्त, चारों आदेशों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि कारण दर्ज किए गए थे, यद्यपि उनमें धारा 59–क(2), आबकारी अधिनियम का स्पष्ट उल्लेख नहीं है – यह तथ्य कि 14 अन्य आदेशों में उन्होंने धारा 59–क(2), आबकारी अधिनियम का उल्लेख किया था, अपने–आप में संबंधित चार जमानत आदेशों के पारित किए जाने में कदाचार का अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त नहीं है – यह एक अत्यंत खतरनाक प्रस्ताव होगा कि उन निर्णयों और आदेशों को, जिनमें विधिक प्रावधानों का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है, स्वयमेव बेईमान निर्णय माना जाए – जांच प्रतिवेदन में की गई निष्कर्षणाएँ विकृत हैं और अभिलेख पर उपलब्ध निष्कर्षों द्वारा समर्थित नहीं हैं – उच्च न्यायालय ने आदेश में हस्तक्षेप न करके त्रुटि की – सेवा से हटाने का आदेश, अपीलीय प्राधिकारी का आदेश तथा उच्च न्यायालय का विवादित आदेश निरस्त किए जाते हैं – अपीलकर्ता को यह माना जाएगा कि वह सामान्य सेवानिवृत्ति आयु प्राप्त करने तक सेवा में निरंतर बना रहा – चूँकि अपीलकर्ता को उसकी किसी त्रुटि के बिना सेवा से बाहर रखा गया था, अतः उसे समस्त परिणामी लाभों सहित पूर्ण बकाया वेतन प्रदान किया जाएगा – **न्यायमूर्ति पारदीवाला के अनुसार [सहमति जताते हुए]** केवल जमानत प्रदान करने में गलत आदेश या विवेकाधिकार का गलत प्रयोग, अपने–आप में और इसके अतिरिक्त कुछ न होने पर, विभागीय कार्यवाही प्रारंभ करने का आधार नहीं हो सकता। [कंडिका 29, 33, 35, 39, 40, 41, 43, 1]

न्यायपालिका – जिला न्यायपालिका – न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध आरोप – उच्च न्यायालय का कर्तव्य – सावधानी की टिप्पणी:

अभिनिर्धारित: उच्च न्यायालय, जिसे पर्यवेक्षी नियंत्रण प्राप्त है, उसे अत्यंत सावधानी और सतर्कता बरतनी चाहिए – केवल इसलिए कि कोई आदेश गलत है या निर्णय में कोई त्रुटि है, और इसके अतिरिक्त कुछ भी न हो, एक न्यायिक अधिकारी को अनुशासनात्मक कार्यवाही या अभियोजन की अग्निपरीक्षा से नहीं गुजरना चाहिए – केवल आदेश गलत होने के कारण अनुशासनात्मक कार्रवाई उचित नहीं है और प्रत्येक मामला तथ्यों पर निर्भर करेगा और इसके लिए कोई पूर्ण नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है – कदाचार या बाहरी विचारों से प्रेरित होने का निष्कर्ष केवल इस परिकल्पना से नहीं निकाला जा सकता कि निर्णय त्रुटिपूर्ण है – एक गलत निर्णय फिर भी निर्णय की सद्भावनापूर्ण चूक हो सकता है और अनवधानता, निर्णय की ईमानदार चूक के अनुरूप है – यह निर्णय की सत्यता नहीं बल्कि संबंधित अधिकारी का आचरण है जो निर्णायक होता है – न्यायमूर्ति पारदीवाला के अनुसार [सहमति व्यक्त करते हुए] पर्यवेक्षी नियंत्रण रखने वाले उच्च न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि जिला न्यायपालिका का एक न्यायिक अधिकारी ज्यादातर तनावपूर्ण माहौल में काम करता है – केवल एक गलत आदेश या जमानत देने में विवेक का गलत प्रयोग, बिना किसी अतिरिक्त साक्ष्य के, विभागीय कार्यवाही शुरू करने का आधार नहीं हो सकता। [कंडिका 32, 35, 1]

उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्देश – न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध झूठी एवं तुच्छ शिकायतें बनाम वे शिकायतें जिनमें प्रथम दृष्टया कदाचार पाया जाए – उच्च न्यायालयों द्वारा अपनाया जाने वाला कार्य–पथ :

अभिनिर्धारित: न्यायिक अधिकारियों के खिलाफ झूठी और तुच्छ शिकायतें दर्ज करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध कानून के अनुसार सख्त और कड़ी कार्रवाई की जानी चाहिए

और/या यदि वे झूठी और तुच्छ शिकायतें गढ़ने में संलिप्त पाए जाते हैं – ऐसे मामलों में उपयुक्त परिस्थितियों में न्यायालय की अवमानना की कार्यवाही भी सम्मिलित होगी – यदि झूठी और तुच्छ शिकायतें दर्ज करने वाला या गढ़ने वाला व्यक्ति बार का कोई जिद्दी सदस्य है, तो न्यायालय की अवमानना की कार्यवाही के अलावा, अनुशासनात्मक कार्रवाई के लिए बार काउंसिल को संदर्भ भेजा जाना चाहिए – बार काउंसिल को ऐसे संदर्भ प्राप्त होने पर, मामले का शीघ्र निपटारा करना होगा – समान रूप से, यदि न्यायिक अधिकारी के खिलाफ कदाचार की शिकायत प्रथम दृष्टया सच पाई जाती है, तो अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के लिए तत्काल कार्रवाई की जानी चाहिए और यदि आरोप सिद्ध हो जाते हैं तो कोई नरमी नहीं दिखाई जानी चाहिए – उपयुक्त मामलों में जहाँ न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध आपराधिक अभियोजन की आवश्यकता हो, उच्च न्यायालय को उसे शुरू करने में संकोच नहीं करना चाहिए – हालांकि, उच्च न्यायालय द्वारा ऐसी कार्यवाही शुरू करने में उचित देखभाल और सावधानी बरती जानी चाहिए – केवल इसलिए कि कोई आदेश गलत है या निर्णय में कोई त्रुटि है, बिना किसी अतिरिक्त कारण के, किसी न्यायिक अधिकारी को अनुशासनात्मक कार्यवाही या अभियोजन की अग्निपरीक्षा से नहीं गुजरना चाहिए। [कंडिका 28, 29]

न्याय वितरण प्रणाली – न्यायपालिका – जिला न्यायपालिका – जमानत – जमानत प्रदान करने में विवेकाधिकार का प्रयोग – विचारण न्यायालयों के न्यायाधीशों की हिचकिचाहट – मात्र संदेह के आधार पर विभागीय कार्यवाही प्रारंभ किए जाने का भय:
अभिनिर्धारित: न्यायमूर्ति पारदीवाला के अनुसार [सहमति जताते हुए] केवल संदेह के आधार पर विभागीय कार्यवाही शुरू करना उन प्राथमिक कारणों में से एक है, जिसकी वजह से विचारण न्यायालय के न्यायाधीश जमानत देने के उद्देश्य से अपने विवेक का प्रयोग करने में संकोच करते हैं – ऐसा नहीं होना चाहिए कि किसी विचारण न्यायालय के न्यायाधीश के मन में किसी प्रशासनिक कार्रवाई के किए जाने का छिपा हुआ भय हो, जिसके कारण विधि के सिद्धांतों के भीतर पूरी तरह से आने वाले, किसी योग्य प्रकरण में भी जमानत अस्वीकार कर दी जाए – यही एक कारण है कि उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय जमानत आवेदनों से भर जाते हैं – जिला न्यायपालिका के न्यायालय भारत में न्याय वितरण प्रणाली के संचालन हेतु आवश्यक शक्तियों का प्रयोग करते हैं और जब उच्चतर न्यायालयों द्वारा उनकी स्वायत्तता से समझौता किया जाता है तथा न्यायिक कर्तव्यों पर भय हावी हो जाता है, तब लोकतंत्र और विधि का शासन प्रभावित होता है – समय के साथ, विचारण न्यायालयों के न्यायाधीशों में जमानत से संबंधित मामलों में विवेकाधिकार के प्रयोग के दौरान अपने गंभीर न्यायिक कर्तव्य एवं दायित्व से बचने की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी है – जिला न्यायपालिका के न्यायालय भारत में न्याय वितरण प्रणाली के संचालन हेतु आवश्यक शक्तियों का प्रयोग करते हैं और जब उच्चतर न्यायालयों द्वारा उनकी स्वायत्तता से समझौता किया जाता है तथा न्यायिक कर्तव्यों पर भय हावी हो जाता है, तब लोकतंत्र और विधि का शासन प्रभावित होता है – लोकतंत्र के संचालन हेतु भय और पक्षपात से मुक्त होकर न्याय प्रदान करने वाली स्वतंत्र न्यायपालिका सर्वोपरि है।[कंडिका 2, 3]

उद्धृत न्यायदृष्टान्त

साधना चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [2020] 4 **एससीआर** 888 : (2020) 11 **एससीसी** 760; *आर.आर. पारेख बनाम गुजरात उच्च न्यायालय और*

अन्य [2016] 5 **एससीआर 906: (2016) 14 एससीसी 1**; *भारत संघ एवं अन्य बनाम के.के. धवन* [1993] 1 **एससीआर 296 : (1993) 2 एससीसी 56**; *पी.सी. जोशी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य* [2001] **अनुपूरक 1 एससीआर 369 : (2001) 6 एससीसी 491**; *ईश्वर चंद जैन बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय और अन्य* [1988] **अनुपूरक 1 एससीआर 396: (1988) 3 एससीसी 370**; *रमेश चंद्र सिंह बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय और अन्य* [2007] **3 एससीआर 198: (2007) 4 एससीसी 247;** *कृष्ण प्रसाद वर्मा बनाम बिहार राज्य और अन्य* [2019] **12 एससीआर 861: (2019) 10 एससीसी 640**; *योगीनाथ डी. बागड़े बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य* [1999] **सप. 2 एससीआर 490 : (1999) 7 एससीसी 739 – आश्रित किया गया।**

अभय जैन बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय [2022] **16 एससीआर 693 : (2022) 13 एससीसी 1 – संदर्भित।**

अधिनियमों की सूची

मध्य प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1915; संविदा अधिनियम, 1872।

कीवर्ड की सूची

जिला न्यायपालिका; न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक जांच; न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई; अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही; अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश के विरुद्ध अनुशासनात्मक जांच; जमानत देने वाले न्यायिक आदेशों के आधार पर सेवा से बर्खास्तगी; जांच रिपोर्ट के निष्कर्ष दोषपूर्ण; धारा 59–क, मध्य प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1915; कदाचार; कथित बाहरी विचार; जमानत आदेश; निर्णय की त्रुटि; गलत आदेश; जमानत देने में विवेक का गलत प्रयोग; विभागीय कार्यवाही शुरू करने का कोई आधार नहीं; सद्भावी निर्णय की त्रुटि; जब्त की गई शराब; 50 बल्क लीटर; त्रुटिपूर्ण निर्णय; जिला न्यायाधीश द्वारा प्रारंभिक जांच; बेदाग सेवा; सेवा से निष्कासन न्यायसंगत नहीं; जमानत देने के लिए स्टेनो के माध्यम से रिश्वत; स्वतंत्र न्यायपालिका; जिला न्यायपालिका; जमानत; न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध झूठी और तुच्छ शिकायतें; न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध दुर्भावनापूर्ण या प्रेरित शिकायत; न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध कदाचार की शिकायत यदि प्रथम दृष्टया सही पाई जाती है; बेईमानी पूर्ण निर्णय; परिणामी लाभों के साथ बहाली; विभागीय कार्यवाही शुरू होने का डर; जमानत देने के उद्देश्य से विवेक का प्रयोग करने में विचारण न्यायलय के न्यायाधीशों की अनिच्छा।

किससे उद्भूत मामला

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील क्रमांक 40/2026

डब्ल्यूपी संख्या 8623/2016 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय जबलपुर की मुख्य पीठ के निर्णय और आदेश दिनांक 25.07.2024 से क्रमशः

पक्षकारों की ओर से उपस्थित अधिवक्तागण

अपीलकर्ता(ओं) की ओर से अधिवक्ता:

दामा शेषाद्रि नाडु, वरिष्ठ अधिवक्ता, यश एस. विजय, कनु अग्रवाल, चेतन कानूनगो, शिखर अग्रवाल, सुश्री अनीशा महाजन।

प्रत्यर्थी(ओं)की ओर से अधिवक्ता:
हरमीत सिंह रूपराह, शासकीय उपमहाधिवक्ता, अर्जुन गर्ग, सुश्री सगुन श्रीवास्तव, सुश्री आरुषि कुलश्रेष्ठ, सारांश शुक्ला, अंकित राजगढ़िया, सुश्री मुस्कान बेंसला, सरद कुमार सिंघानिया, शशांक शेखर, मेघराज सिंह, रत्नेश कुमार।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

निर्णय

न्यायमूर्ति श्री के.वी. विश्वनाथन

1. अनुमति प्रदान की गई।

2. यह मामला एक न्यायिक अधिकारी (यहाँ अपीलकर्ता) की उस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति को रेखांकित करता है, जिसे 27 वर्षों की निष्कलंक सेवा के बाद सेवा से हटा दिया गया था। अपीलकर्ता को सेवा से हटाए जाने का एकमात्र और अनन्य आधार वे चार न्यायिक आदेश थे, जिनके माध्यम से उन्होंने कुछ पक्षों को ज़मानत पर रिहा किया था। उन चार आदेशों की तुलना ज़मानत के चौदह अन्य आदेशों से की गई और यह पाए जाने के बाद कार्रवाई की गई कि उन चार आदेशों में मध्य प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1915 (संक्षेप में "आबकारी अधिनियम") की धारा 59-क का उल्लेख नहीं किया गया था। उच्च न्यायालय के अनुसार, अन्य चौदह आदेशों में अपीलकर्ता ने उक्त धारा का संदर्भ दिया था, जिसका अर्थ यह निकाला गया कि वे संविधि में उक्त धारा के अस्तित्व के प्रति सचेत थे। धारा 59-क ज़मानत देने के लिए उन शर्तों को निर्धारित करती है, जिन्हें अब प्रसिद्ध रूप से "दोहरी शर्तों" के रूप में जाना जाता है।

3. हमारे समक्ष प्रश्न यह है कि क्या तथ्यों के आधार पर, केवल ज़मानत देने के चार न्यायिक आदेशों के आधार पर और बिना किसी अतिरिक्त साक्ष्य के, प्राधिकारी अपीलकर्ता को सेवा से हटाने के लिए न्यायोचित थे?

4. मामले के तथ्य अत्यंत संक्षिप्त हैं। अपीलकर्ता 31.10.1987 को मध्य प्रदेश न्यायिक सेवा में व्यव्हार न्यायधीश (कनिष्ठ खण्ड) के रूप में सेवा में सम्मिलित हुए थे। अपीलकर्ता ने पदोन्नति की सीढ़ियाँ चढ़ीं और 2003 में उन्हें अपर जिला जज के रूप में पदोन्नत किया गया तथा सितंबर, 2008 में उन्हें उक्त पद पर पुष्ट कर दिया गया। 16.05.2011 को उनका स्थानांतरण खरगोन, जिला मंडलेश्वर (म.प्र.) में कर दिया गया, जहाँ उन्होंने प्रथम अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश के रूप में कार्यभार ग्रहण किया। अपने कर्तव्यों के निर्वहन के दौरान, उन्होंने आबकारी अधिनियम के तहत ज़मानत आवेदनों सहित कई मामलों का निस्तारण किया।

5. जैतापुर, खरगोन के निवासी जयपाल मेहता ने मुख्य न्यायमूर्ति, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर के समक्ष एक शिकायत दर्ज कराई। उक्त शिकायत, जिसमें ज़मानत आदेशों का कोई विवरण नहीं दिया गया था और जो अत्यंत सामान्य शब्दों में थी, इस प्रकार है:-

> "विषय: आईपीसी की धारा 34(2) के तहत मामलों के निपटारे के संबंध में।"
>
> महोदय,

उपरोक्त विषयांतर्गत निवेदन है कि प्रथम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश श्री सुलिया, जो खरगोन, जिला-पश्चिम निमाड़, मंडलेश्वर में पदस्थ हैं, अपने स्टेनो अनिल जोशी, लिपिक के माध्यम से रिश्वत लेकर आबकारी अधिनियम की धारा 34/2 के उन मामलों में जमानत दे रहे हैं, जिनमें 50 बल्क लीटर शराब जब्त की गई है; जबकि अतिरिक्त जिला न्यायाधीश/सत्र न्यायाधीश को उक्त जमानत आवेदनों को स्वीकार करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। ऐसी जमानतें माननीय उच्च न्यायालय द्वारा ही स्वीकृत की जाती हैं। स्टेनो अनिल जोशी प्रत्येक मामले में यह चुनौती देता है कि आप चाहे धारा 302, 307, क्लेम या सिविल मामला लाएं, मेरी साहब के साथ अच्छी सेटिंग है, मैं इसे सुलझा दूंगा, बस आपको मेरी इच्छानुसार भुगतान करना होगा। ऐसे भ्रष्ट कर्मचारी के कारण न्यायपालिका की छवि धूमिल हो रही है। पीड़ित पक्षों को न्याय मिलने के स्थान पर उनके साथ अन्याय किया जा रहा है। इसके लिए उत्तरदायी कौन होगा? पूर्व में वर्ष 1995-96 में भी उक्त भ्रष्ट कर्मचारी के विरुद्ध रिश्वत की गंभीर शिकायतें की गई थीं, जिन पर कोई कार्रवाई नहीं हुई। उक्त कर्मचारी पिछले 25 वर्षों से खरगोन में ही पदस्थ है और अधिवक्ताओं के साथ खुलेआम सांठगांठ कर धनार्जन कर रहा है। यदि उसके बैंक खातों की जांच की जाए, तो सत्य उजागर हो जाएगा। यदि जनता का विश्वास न्यायपालिका से उठ गया, तो सैन्य शासन या जंगलराज की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

6. यह देखा जाएगा कि शिकायत के अनुसार, आरोप यह था कि अपीलार्थी अपने स्टेनो अनिल जोशी के माध्यम से आबकारी अधिनियम के उन मामलों में जमानत देने के लिए रिश्वत ले रहा था, जिनमें जब्त शराब की मात्रा 50 बल्क लीटर या उससे अधिक थी; कि उक्त अनिल जोशी यह दावा कर रहा था कि वह अनुचित प्रतिफल के बदले अपीलार्थी के माध्यम से कार्य करवा देगा; कि ऐसे भ्रष्ट कर्मचारी के कारण न्यायपालिका की बदनामी हो रही थी; कि वर्ष 1995-96 में भी उक्त कर्मचारी के विरुद्ध रिश्वतखोरी की गंभीर शिकायतें की गई थीं, जिन पर कोई कार्रवाई नहीं की गई थी; कि उक्त कर्मचारी 25 वर्षों से अधिक समय से खरगोन में पदस्थ है और अवैध साधनों के माध्यम से धन कमा रहा है और इस संबंध में जांच आवश्यक है।

7. प्रत्यर्थी क्रमांक-2 द्वारा इस न्यायालय के समक्ष दायर प्रति-शपथ पत्र से यह प्रतीत होता है कि, जिला न्यायाधीश (सतर्कता एवं निरीक्षण), इंदौर क्षेत्र, इंदौर द्वारा अपीलकर्ता के विरुद्ध एक प्रारंभिक जाँच संचालित की गई थी। दिनांक 06.10.2012 को प्रधान रजिस्ट्रार (सतर्कता एवं निरीक्षण) द्वारा एक टिप्पणी प्रस्तुत की गई, जिसके आधार पर अपीलकर्ता के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही शुरू करने का निर्णय लिया गया।

8. जो तथ्य उभरकर सामने आते हैं वे यह हैं कि, प्रारंभिक जाँच में अपीलकर्ता द्वारा जमानत कार्यवाहियों में पारित कुछ आदेशों का परीक्षण किया गया और कुछ आदेशों को अलग निकाला गया। अपीलकर्ता के विरुद्ध दो आरोप विरचित किए गए थे, जिनमें से दूसरे आरोप को जाँच अधिकारी द्वारा स्वीकार्य रूप से सिद्ध नहीं माना गया। आरोप निम्नानुसार हैं:

"चूँकि, आप श्री निर्भय सिंह सुलिया, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, खरगोन, जिला मंडलेश्वर के रूप में कार्यरत रहते हुए, निम्नलिखित कृत्य किए हैं, जो सिद्ध होने पर गंभीर कदाचार की श्रेणी में आएंगे:-

आरोप का अनुच्छेद-I

यह कि आपने, अतिरिक्त एवं सत्र न्यायाधीश के रूप में कार्य करते हुए, भ्रष्ट या परोक्ष मंशा अथवा कतिपय बाह्य प्रतिफल के चलते जमानत आवेदन संख्या

129/11 लोकेश बनाम म.प्र. राज्य आदेश दिनांक 1.8.11, जमानत आवेदन संख्या 136/11 बाबूलाल एवं अन्य बनाम राज्य आदेश दिनांक 04.08.11, जमानत आवेदन संख्या 200/11 मोहन बनाम म.प्र. राज्य आदेश दिनांक 07.12.11, जमानत आवेदन संख्या 123/12 जितेन्द्र एवं नंतिया बनाम राज्य तथा संख्या 122/12 गुलाब एवं अन्य बनाम म.प्र. राज्य आदेश दिनांक 31.08.12 के जमानत आवेदनों को मध्य प्रदेश आबकारी अधिनियम की धारा 59-क के प्रावधानों के विरुद्ध स्वीकार किया जहाँ इन सभी मामलों में जब्त शराब की मात्रा 50 बल्क लीटर या उससे अधिक थी। इसके विपरीत, आपने जमानत आवेदन संख्या 89/11 आदेश दिनांक 16.06.2011, जमानत आवेदन संख्या 92/11 आदेश दिनांक 23.06.11, जमानत आवेदन संख्या 104/11 आदेश दिनांक 01.07.2011, जमानत आवेदन संख्या 103/11 आदेश दिनांक 04.07.11, जमानत आवेदन संख्या 111/11 आदेश दिनांक 11.07.11, जमानत आवेदन संख्या 121/11 आदेश दिनांक 21.07.11, जमानत आवेदन संख्या 140/11 आदेश दिनांक 12.08.11, जमानत आवेदन संख्या 160/11 आदेश दिनांक 22.09.11 और छह अन्य जमानत आवेदनों को खारिज कर दिया, जिनमें जब्त शराब की मात्रा 50 बल्क लीटर या अधिक थी। इस प्रकार, आपने उपरोक्त जमानत आवेदनों को स्वीकार करने में दुर्भावनापूर्ण तरीके से दुहरा मापदंड अपनाया है।

आरोप का अनुच्छेद-II

यह कि आपने, भ्रष्ट या परोक्ष उद्देश्य से अथवा किन्हीं बाहरी कारणों से, अपराध संख्या 101/2012 के अंतर्गत गंभीर सामूहिक बलात्कार के मामले में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के तहत प्रथम जमानत आवेदन संख्या 101/2012 पप्पू बनाम मध्य प्रदेश राज्य को बिना किसी पर्याप्त कारण बताए स्वीकार कर लिया, जबकि अभियुक्त पहले से ही इसी प्रकृति के एक अन्य अपराध संख्या 103/2012 थाना ऊन में भारतीय दंड संहिता की धारा 363, 366, 376(2)(छ) के तहत मुकदमे का सामना कर रहा था।

आपके उपरोक्त कृत्य, एक न्यायिक अधिकारी की गरिमा के प्रतिकूल होने के कारण मध्य प्रदेश सिविल सेवा (आचरण) नियम, 1965 के नियम 3 के तहत गंभीर कदाचार की श्रेणी में आते हैं और मध्य प्रदेश सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 1966 के नियम 10 के अंतर्गत दंडनीय हैं।"

9. आरोप-I के अवलोकन से यह प्रकट होता है कि जिन जमानत आवेदनों में आवेदकों को जमानत दी गई थी, उनमें पारित आदेश ही इस गंभीर आरोप का आधार थे:-

जमानत आवेदन संख्या	**आदेश की तिथि**
129/2011	01.08.2011
136/2011	04.08.2011
200/2011	07.12.2011
123/2011 & 122/2012	31.08.2012

10. आरोप यह था कि भ्रष्ट मंशा या बाहरी कारणों से, आबकारी अधिनियम की धारा 59-क के विपरीत जाकर जमानत आवेदन स्वीकार किए गए। इसकी तुलना उन 14 अन्य जमानत आदेशों से की गई थी, जिनमें अपीलकर्ता ने जमानत खारिज कर दी थी। यह उल्लेखनीय है कि इन पाँच जमानत आदेशों में से, जमानत आवेदन संख्या 200/2011 जिसकी निस्तारण तिथि 07.12.2011 थी वास्तव

में एक ऐसा मामला था जहाँ अपीलकर्ता ने जमानत खारिज की थी। किसी प्रकार वह आदेश भी जमानत देने के आदेश के रूप में "आरोप-I" में सम्मिलित हो गया। खैर जो भी हो, गवाहों की सूची में जयपाल मेहता का नाम नामित किया गया था और साथ ही एक सामान्य कथन भी था - "कोई भी अन्य गवाह जिसे आवश्यक समझा जाए"।

11. अपीलकर्ता ने अपना उत्तर प्रस्तुत किया और प्रत्येक जमानत आदेश का विवरण दिया जो आरोप का विषय थे।

12. हमने वास्तविक जमानत आदेशों का परिशीलन किया है। जमानत आवेदन संख्या 129/2011 (60 लीटर शराब) के जमानत आदेश में दिया गया कारण निम्नवत था:-

> "दोनों पक्षों के तर्कों को सुनने के उपरांत, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत आपराधिक प्रकरण क्रमांक 1685/11 का परिशीलन किया गया। परिशीलन करने पर यह स्पष्ट होता है कि दिनांक 25.07.2011 को दोनों आवेदकों/अभियुक्तों के विरुद्ध म.प्र. आबकारी अधिनियम की धारा 34(2) के उल्लंघन के तहत चालान पेश किया गया है, और इसके विचारण में समय लगने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। अपराध की प्रकृति, आरोपों को देखते हुए और वर्तमान प्रकरण यानी अपराध क्रमांक 232/11 में एकत्रित साक्ष्यों के गुण-दोष पर टिप्पणी किए बिना, तथा उक्त न्याय दृष्टांतों पर भरोसा करते हुए, जहाँ विचारण में समय लगने की संभावना है, और आवेदक/अभियुक्त स्वयं स्थायी निवासी होने के नाते उनके फरार होने या साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ करने की कोई आशंका नहीं है, अतः इन आवेदकों/अभियुक्तों को जमानत का लाभ प्रदान करना न्यायोचित प्रतीत होता है। इसी कारण से, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के तहत वर्तमान जमानत आवेदन को एतद्द्वारा स्वीकार किया जाता है।"

13. इसी प्रकार, अन्य आदेशों में, चालान पेश होने और आवेदकों के ग्रामीण किसान होने तथा उनके फरार होने का कोई जोखिम न होने जैसे कारणों का उल्लेख किया गया था। आबकारी अधिनियम की धारा 59-क(2) के तहत उल्लेखित दोहरी शर्तों का कोई स्पष्ट संदर्भ नहीं दिया गया था।

14. जांच के दौरान, शिकायतकर्ता जयपाल मेहता का परीक्षण नहीं किया गया। इसके बजाय, आरोप के समर्थन में गवाह नंबर 1 के रूप में एडीजे न्यायालय, खरगोन के कार्यकारी क्लर्क गेंदालाल चौहान का परीक्षण किया गया। साक्षी ने सभी प्रदर्शों को अंकित किया और श्रेणीबद्ध रूप से निम्नलिखित शपथपूर्वक बयान दिया, जो वास्तव में अपीलकर्ता के पक्ष में था:—

> "यह कहना सही है कि आदेश पारित करते समय, अनिल जोशी प्रथम अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के न्यायालय में स्टेनो के पद पर पदस्थ थे। वह पिछले 7-8 वर्षों से खरगोन में पदस्थ हैं, जिन्हें मैं अपने सहकर्मी होने के कारण जानता हूँ। मैंने कभी अनिल को किसी से यह कहते हुए नहीं देखा कि सुलिया साहब के साथ उनके अच्छे संबंध हैं और मैं सेटिंग करके काम करवा दूंगा। किसी भी अधिवक्ता ने मुझे यह नहीं बताया कि अनिल जोशी की सुलिया साहब के साथ कोई सेटिंग है।"

15. अपीलकर्ता ने बचाव में अभियोजक के.पी. त्रिपाठी का परीक्षण किया, जो उन सभी 18 जमानत आवेदनों में उपस्थित हुए थे जो आरोप का विषय थे। उन्होंने निम्नानुसार शपथपूर्वक बयान दिया:—

"मेरा यह मानना नहीं था कि न्यायालय द्वारा किसी भी प्रकार के दोहरे मापदंड अपनाए गए हैं। यदि ऐसा होता, तो मैं माननीय उच्च न्यायालय में कार्यवाही करने हेतु राज्य को अपनी राय देता। प्रदर्श पी-19 के अनुसार, अभियुक्त पप्पू के विरुद्ध थाना ऊन में मात्र एक अपराध यानी अपराध क्रमांक 102/12 पंजीकृत है। इसके अतिरिक्त, मेरी जानकारी के अनुसार, इस अभियुक्त के विरुद्ध कोई अन्य अपराध पंजीकृत नहीं है, क्योंकि पुलिस रिपोर्ट में उसके विरुद्ध किसी अन्य अपराध के पंजीकरण का कोई उल्लेख नहीं है। मुझे न्यायालय की कार्यप्रणाली पूर्णतः निष्पक्ष प्रतीत होती है।"

…..

"आबकारी अधिनियम के अंतर्गत जमानत के तीन आवेदन स्वीकार किए गए हैं, और उक्त आवेदनों में से 15 आवेदन खारिज कर दिए गए हैं। मेरी राय में, प्रदर्श पी-1, पी-2 और पी-4 के रूप में चिह्नित जमानत के मामलों में, जमानत आवेदन स्वीकार करने के जो आदेश पारित किए गए हैं, वे संबंधित मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति और माननीय उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय के न्याय-दृष्टांतों के अनुसरण में दिए गए हैं; वे आदेश पूर्णतः गुण-दोष पर आधारित हैं और कानून के अनुसार सुसंगत एवं सत्य हैं। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा जो 15 जमानत आवेदन खारिज किए गए हैं, उनमें से प्रदर्श पी-9, पी-12, पी-13, पी-17 और पी-18 के रूप में चिह्नित आदेशों के समय मामला अन्वेषण के प्रारंभिक चरण में था।"

…….

"नोट: जांच अधिकारी द्वारा प्रश्न:-

प्रश्न: वे जमानत आदेश, जिनमें जमानत आवेदन स्वीकार किए गए हैं, क्या वे आदेश आपके अनुसार या लोक अभियोजक की राय में उचित हैं या अनुचित? इस संबंध में आपका क्या कहना है।

उत्तर: मेरी राय में, अर्थात लोक अभियोजक की हैसियत से, जमानत देने के आदेश पूर्णतः उचित और उचित आधारों पर थे।"

16. उपरोक्त साक्ष्य के बावजूद, जांच अधिकारी ने निम्नलिखित निष्कर्ष दर्ज करते हुए "आरोप-I" को प्रमाणित माना:-

“अतः, उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर, अंतिम निष्कर्ष के रूप में, यह विभाग के पक्ष में सिद्ध किया जाता है कि अपचारी अधिकारी श्री एन.एस. सूलिया ने अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश की क्षमता में, आबकारी अधिनियम की धारा 34(2), 49-क के अपराधों हेतु जमानत आवेदनों के निपटान में निष्पक्ष न रहकर, और परोक्ष अभिसंधि के साथ तथा उक्त अधिनियम की धारा 59-क के अनिवार्य प्रावधानों का जानबूझकर उल्लंघन करते हुए, जमानत आवेदन संख्या 129/11, 136/11, 123/12, 122/12 को स्वीकार करके और कुछ जमानत आवेदनों को दुर्भावनापूर्ण एवं मनमाने ढंग से दोहरे मानदंड अपनाकर खारिज करके कदाचार किया है, जिन्होंने म.प्र. सिविल सेवा (आचरण) नियम, 1961 के नियम 3 का उल्लंघन किया है, जो म.प्र. सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 1966 के नियम 10 के तहत दंडनीय है।”

17. दिनांक 21.03.2014 को, जांच रिपोर्ट की एक प्रति अपीलार्थी को प्रदान की गई और उनसे दंड के संबंध में कारण बताने के लिए कहा गया। अपीलार्थी ने दिनांक 10.04.2014 के अपने पत्र द्वारा एक विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किया।

18. दिनांक 02.09.2014 को, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की सिफारिश पर, प्रमुख सचिव, मध्य प्रदेश शासन, विधि एवं विधायी कार्य विभाग द्वारा अपीलार्थी को सेवा से हटाने का आदेश पारित किया गया। उक्त आदेश के विरुद्ध दायर प्रतिवेदन/अपील को दिनांक 17.03.2016 को खारिज कर दिया गया।

19. अपीलार्थी ने सेवा से हटाने के आदेश और अपीलीय प्राधिकारी के आदेश को चुनौती देते हुए मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर के समक्ष एक रिट याचिका (रिट याचिका संख्या 8623/2016) दायर की और परिणामी लाभों के साथ पुनर्नियुक्ति की प्रार्थना की।

20. दिनांक 25.07.2024 के आक्षेपित आदेश द्वारा, उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निष्कर्ष दर्ज करते हुए रिट याचिका को खारिज कर दिया है:-

> "यदि उपरोक्त संदर्भित मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों को संज्ञान में लिया जाता है, तो वर्तमान मामले में अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर जांच प्राधिकारी द्वारा निकाले गए उचित निष्कर्ष में न तो इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जा सकता है और न ही इसे इस हद तक विकृत या अनुचित कहा जा सकता है कि इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जाना आवश्यक हो।
>
> वर्तमान मामले में उपलब्ध सामग्री पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के पद पर कार्यरत थे, जिसके साथ एक बड़ी जिम्मेदारी आती है और वह अपने पद के अनुरूप आचरण करने के दायित्व के अधीन थे। उनका यह कर्तव्य था कि वे कानून के प्रावधानों के अनुरूप जमानत आवेदनों की कार्यवाही संचालित करें। उन्होंने उच्च न्यायालय के न्यायिक निर्णयों पर भरोसा करते हुए कुछ आवेदकों को जमानत का लाभ प्रदान किया, जबकि अन्य मामलों में उन निर्णयों पर विचार किए बिना जमानत देने से इनकार कर दिया। वर्तमान मामले में जांच की प्रक्रिया में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का कोई उल्लंघन या त्रुटि नहीं पाई गई है। प्रक्रियात्मक अवैधता या विभागीय जांच के संचालन में अनियमितता के अभाव में, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। अभिलेख पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री पर विचार करने के बाद और कानून की स्थापित स्थिति को देखते हुए, हमें दंड/निष्कासन के आदेश दिनांक 02.09.2014 और अपील खारिज करने के आदेश दिनांक 17.03.2016 में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं मिलता है, और तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है।"

21. व्यथित होकर, अपीलकर्ता हमारे समक्ष उपस्थित है।

22. हमने अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री दामा शेषाद्रि नायडू, जिन्हें विद्वान अधिवक्ता श्री कानू अग्रवाल द्वारा सहायता प्रदान की गई, और प्रत्यर्थी संख्या 2 (मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय) की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अर्जुन गर्ग को सुना, जिन्होंने उक्त प्रत्यर्थी का पक्ष कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया। हमने पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत लिखित दलीलें और न्यायिक मिसाल के संकलन सहित अभिलेखों का अवलोकन किया है।

अपीलकर्ता के तर्क:

23. अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि आरोप सीधे तौर पर स्टेनोग्राफर - अनिल जोशी के खिलाफ थे; कि विभागीय जांच के दौरान न तो शिकायतकर्ता - जयपाल मेहता और न ही स्टेनोग्राफर को गवाह के रूप में पेश किया गया था और यह कि जिन जमानत आदेशों की जांच की गई थी, वे वैध आधारों पर पारित किए गए थे। यहाँ तक कि विशेष कानून के मामलों में भी "जमानत नियम है और जेल अपवाद है"; यह कि जांच अधिकारी ने एक अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य करते हुए जमानत आदेशों की वैधता और औचित्य का परीक्षण किया है। यह कि विभागीय गवाह गेंदालाल चौहान और लोक अभियोजक ने अपने बयान में आरोपों का समर्थन नहीं किया और अंत में यह तर्क दिया गया कि केवल इसलिए कि तथ्यों के एक दिए गए समूह पर एक अलग निष्कर्ष संभव है, किसी न्यायिक अधिकारी को आरोपित करने का आधार नहीं हो सकता। यह भी प्रस्तुत किया गया कि क्षेत्राधिकार का गलत प्रयोग या कानून की भूल या कानून की गलत व्याख्या, अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का आधार नहीं हो सकती।

प्रत्यर्थी क्रमांक 2 - मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के तर्क:-

24. प्रत्यर्थी क्रमांक 2, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि जाँच की प्रक्रिया का सम्यक रूप से पालन किया गया है; यह कि इस न्यायालय का यह सुसंगत मत रहा है कि न्यायालय, जाँच रिपोर्ट पर एक अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करेगा और एकमात्र विचारणीय बिंदु यह था कि क्या अपचारी को उचित अवसर देने के पश्चात जाँच निष्पक्ष रूप से संचालित की गई थी। आगे यह निवेदन किया गया कि प्रश्नगत जमानत आदेशों में आबकारी अधिनियम की धारा 59-क (2) का उल्लेख तक नहीं किया गया था, जबकि अन्य जमानत आदेशों में जमानत खारिज करते समय इसका उल्लेख किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि जाँच अधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अपीलार्थी का आचरण निष्पक्ष नहीं था और अपीलार्थी ने धारा 59-क के अधिदेश का उल्लंघन किया तथा दुर्भावनापूर्ण एवं मनमाने ढंग से दोहरे मानदंड अपनाए। यह प्रस्तुत किया गया कि एक न्यायिक अधिकारी से कर्तव्य के प्रति समर्पण के अत्यंत उच्च मानक बनाए रखने की अपेक्षा की जाती है। ऐसा तर्क देते हुए, यह अभिवचन किया गया कि आक्षेपित आदेश में किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

विचारणीय प्रश्न:-

25. विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या जाँच रिपोर्ट के आधार पर अपीलार्थी को सेवा से हटाने का आदेश कानूनन न्यायोचित है और क्या हस्तक्षेप के लिए कोई ठोस आधार बनाया गया है?

विश्लेषण एवं निष्कर्ष:-

26. वर्तमान मामला एक वरिष्ठ न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक जाँच का है। इससे पहले कि हम इस न्यायालय द्वारा निर्धारित उन मापदंडों को स्थापित करें कि किन परिस्थितियों में एक न्यायिक अधिकारी को उसके कर्तव्यों के निर्वहन के संबंध में दंड दिया जा सकता है, कुछ प्रारंभिक टिप्पणियां करना उचित होगा।

27. एक निर्भीक न्यायाधीश स्वतंत्र न्यायपालिका का आधार स्तंभ होता है, ठीक वैसे ही जैसे स्वतंत्र न्यायपालिका स्वयं वह नींव है जिस पर विधि का शासन टिका होता है। एक न्यायिक अधिकारी को मामलों का निर्णय करने का गुरुतर दायित्व सौंपा जाता है। अनिवार्य रूप से मामले का एक पक्ष हार जाता है और अप्रसन्न होकर वापस जाता है। उनमें से असंतुष्ट तत्व, हिसाब बराबर करने की मंशा से तुच्छ/बेबुनियाद आरोप लगा सकते हैं। अधीनस्थ न्यायपालिका पर कार्य का अत्यधिक दबाव होता है और वह कठिन कार्य परिस्थितियों में कार्य करती है। एक दिन में बड़ी संख्या में मामले

सूचीबद्ध होते हैं और अधिकांश न्यायिक अधिकारी अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते समय अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान देते हैं।

28. देश के विभिन्न हिस्सों से ऐसे उदाहरण भी सामने आए हैं, जहाँ न केवल असंतुष्ट पक्षों ने, बल्कि बार के कुछ शरारती तत्वों ने भी विचारण न्यायपालिका के सदस्यों के विरुद्ध झूठी और गुमनाम शिकायतें गढ़कर उन्हें डराने-धमकाने की रणनीति अपनाई है। न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध झूठी और बेबुनियाद शिकायत दर्ज करने वाले और/या ऐसी झूठी और बेबुनियाद शिकायतों को गढ़ने में लिप्त व्यक्तियों के विरुद्ध कानून के अनुसार सख्त और कड़ी कार्रवाई की जानी चाहिए। ऐसी कार्यवाहियों में, उपयुक्त मामलों में, न्यायालय की अवमानना की कार्यवाही भी शामिल होगी। यदि झूठी और बेबुनियाद शिकायत दर्ज करने वाला या उसे गढ़ने वाला व्यक्ति बार का कोई हठी सदस्य है, तो अवमानना की कार्यवाही के अतिरिक्त, अनुशासनात्मक कार्रवाई के लिए बार काउंसिल को निर्देश भेजा जाना चाहिए। बार काउंसिल को ऐसे निर्देश प्राप्त होने पर मामले का शीघ्र निस्तारण करना होगा।

29. इसी प्रकार, यदि न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध कदाचार की शिकायत *प्रथम दृष्ट्या* सही पाई जाती है, तो अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के लिए तत्काल कदम उठाए जाने चाहिए और यदि आरोप सिद्ध हो जाते हैं, तो कोई उदारता नहीं दिखाई जानी चाहिए। इतना ही नहीं, जिन उपयुक्त मामलों में न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध आपराधिक अभियोजन आवश्यक हो, वहां उच्च न्यायालय को इसे शुरू करने में संकोच नहीं करना चाहिए। न्यायपालिका के निष्पक्ष नाम को कलंकित करने वाली काली भेड़ों को बाहर निकालने का यही एकमात्र तरीका है। उच्च न्यायालय द्वारा ऐसी कार्यवाही शुरू करने में उचित सावधानी और सतर्कता बरती जानी चाहिए। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि केवल इसलिए कि कोई आदेश गलत है या निर्णय में कोई त्रुटि है, बिना किसी अन्य ठोस आधार के, किसी न्यायिक अधिकारी को अनुशासनात्मक कार्यवाही या अभियोजन की अग्निपरीक्षा से न गुजरना पड़े।

30. इस संबंध में इस न्यायालय द्वारा ***साधना चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य***[1] में दी गई टिप्पणियों को स्मरण करना प्रासंगिक होगा:-

> "**20.** हम इस तथ्य से भी अनभिज्ञ नहीं हैं कि केवल संदेह "कदाचार" का आधार नहीं हो सकता। कदाचार की किसी भी "संभावना" को मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य के साथ पुष्ट किया जाना आवश्यक है, भले ही साक्ष्य का मानक स्पष्ट रूप से आपराधिक मुकदमे के समान न हो। इन पैमानों को लागू करते समय, उच्च न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह विभिन्न न्यायाधीशों के बीच अलग-अलग मानकों और दृष्टिकोणों के अस्तित्व पर विचार करे। ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं जहाँ न्यायिक अधिकारी जमानत देने, एम.ए.सी.टी के तहत मुआवजा देने या अधिगृहीत भूमि के लिए मुआवजा देने, श्रमिकों को पिछला वेतन देने या अन्य अपकृत्य दायित्वों के मामलों में अनिवार्य मुआवजा देने में उदार होते हैं। **ऐसे राहत-उन्मुख न्यायिक दृष्टिकोणों को अपने आप में किसी अधिकारी की ईमानदारी और सत्यनिष्ठा पर आक्षेप लगाने का आधार नहीं बनाया जा सकता।**
>
> **21. इसके अतिरिक्त, इस वास्तविकता की अनदेखी नहीं की जा सकती कि हमारा देश एक ऐसा देश है, जहाँ मात्र कुछ पैसों या क्षणिक सस्ती लोकप्रियता के लिए न्यायपालिका की छवि को धूमिल करने हेतु अनगिनत शिकायतकर्ता बिना किसी संकोच के तत्पर रहते हैं। कभी-कभी, बार के कुछ असंतुष्ट सदस्य भी उनके साथ हाथ मिला लेते हैं, और अधीनस्थ**

न्यायपालिका के अधिकारी प्रायः इसके सबसे आसान लक्ष्य होते हैं। अतः, यह उच्च न्यायालयों का कर्तव्य है कि वे अपना संरक्षण कवच प्रदान करें और यह सुनिश्चित करें कि ईमानदार एवं निष्कपट न्यायिक अधिकारियों को अनुचित आक्रमणों का शिकार न बनाया जाए।

26. हम इस प्रस्थापना में कोई त्रुटि नहीं पाते हैं कि अधिनिर्णयन का अंतिम परिणाम महत्व नहीं रखता, बल्कि केवल यह प्रासंगिक है कि क्या दोषी अधिकारी ने अवैध परितोषण (मौद्रिक या अन्यथा) लिया था या प्रक्रिया के संचालन के दौरान वह बाहरी कारणों से प्रभावित हुआ था। वास्तव में, कई बार यह संभव है कि एक न्यायिक अधिकारी अपने पद के लिए अशोभनीय आचरण में लिप्त हो और साथ ही ऐसा आदेश पारित करे जिसका परिणाम कानूनी रूप से सही हो। ऐसा अशोभनीय आचरण किसी न्यायाधीश द्वारा किसी मामले को बारी से पहले लेने, स्थगन के माध्यम से सुनवाई में देरी करने, या पक्षकारों को उनके कानूनी हक देने के बदले रिश्वत मांगने आदि के रूप में हो सकता है। इनमें से किसी का भी परिणाम पर प्रभाव पड़ना आवश्यक नहीं है। तथापि, वर्तमान मामले में महत्वपूर्ण यह है कि आरोप-पत्र के अवलोकन से पता चलता है कि अपीलार्थी के विरुद्ध प्रक्रिया को दूषित करने का ऐसा कोई आरोप नहीं लगाया गया है।"

(ज़ोर दिया गया)

31. ***अभय जैन बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय***[2] में, इस न्यायालय ने ***साधना चौधरी*** *(उपरोक्त)* में की गई टिप्पणियों को अपनी स्वीकृति के साथ उद्धृत किया।

32. जब झूठे आरोप बड़ी संख्या में और तेजी से लगाए जाते हैं, तो न्यायिक अधिकारी उन पर प्रतिक्रिया नहीं दे सकते। यहीं पर उच्च न्यायालय, जिसे पर्यवेक्षी नियंत्रण प्राप्त है, को अत्यधिक सावधानी और सतर्कता बरतनी होती है। जब उच्च न्यायालय के समक्ष प्रशासनिक पक्ष पर ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है, तो उसके मानदंड क्या होने चाहिए, इसे ***आर.आर. पारेख बनाम गुजरात उच्च न्यायालय और अन्य***[3] के मामले में न्यायालय की ओर से बोलते हुए मुख्य न्यायाधीश डी.वाई. चंद्रचूड़ ने अत्यंत सुस्पष्ट रूप से निम्नानुसार निर्धारित किया है: -

"**16.** क्या एक न्यायिक अधिकारी किसी परोक्ष उद्देश्य या भ्रष्ट आचरण से प्रेरित था, इसका निर्धारण अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के सावधानीपूर्वक मूल्यांकन के आधार पर किया जाना चाहिए। इस प्रकृति के कदाचार से जुड़े हर मामले में भ्रष्टाचार के सीधे प्रमाण हमेशा उपलब्ध नहीं हो सकते हैं। कानून या प्रक्रिया के शासी सिद्धांतों का घोर उल्लंघन, किसी मामले में विधिक सिद्धांतों की जानबूझकर की गई या लापरवाह अवहेलना का सूचक हो सकता है। किसी ठोस स्पष्टीकरण के अभाव में, यह अनुशासनात्मक प्राधिकारी को तय करना है कि क्या कोई ऐसी प्रवृत्ति सामने आयी है जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि न्यायिक अधिकारी बाहरी विचारों से प्रेरित था। एक न्यायिक अधिकारी के कदाचार से जुड़े मामलों को संवेदनशीलता और सावधानी से निपटाया जाना चाहिए। अनुशासनात्मक प्राधिकारी को एक सशक्त सामान्य समझ से निर्देशित होना चाहिए। इस श्रेणी के एक छोर पर वे मामले हैं जहाँ कदाचार के सीधे प्रमाण उपलब्ध हैं। किसी आपत्तिजनक साक्ष्य की उपस्थिति के संबंध में साक्ष्यों की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि कानूनी रूप से स्वीकार्य साक्ष्य के आधार पर कदाचार का कृत्य स्थापित होता है

> या नहीं। फिर भी, अन्य मामलों में, किसी निर्णय के भ्रष्ट उद्देश्य से प्रेरित होने का सीधा प्रमाण उपलब्ध नहीं भी हो सकता है। ऐसे मामलों में जो मुद्दा उत्पन्न होता है वह यह है कि क्या ऐसी परिस्थितियाँ मौजूद हैं जिनसे यह निष्कर्ष वैध रूप से निकाला जा सकता है कि न्यायिक अधिकारी बाहरी कारणों से प्रेरित था। स्पष्ट रूप से ऐसा निष्कर्ष केवल इस परिकल्पना के आधार पर नहीं निकाला जा सकता कि निर्णय त्रुटिपूर्ण है। **एक गलत निर्णय भी सद्भावी निर्णय की भूल हो सकता है। असावधानी, निर्णय की एक ईमानदार भूल के अनुरूप ही होती है। एक न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध कदाचार के आरोप को, विधि या तथ्य की विशुद्ध रूप से त्रुटिपूर्ण निर्णय से अलग किया जाना चाहिए। न्यायिक निर्धारण की वैधता, उस निर्धारण की शुद्धता के परीक्षण के लिए कानून में दिए गए उपचारों के अधीन है। यहाँ प्रश्न निर्णय की शुद्धता का नहीं, बल्कि अधिकारी के आचरण का है। अनुशासनिक प्राधिकारी को यह निर्धारित करना होता है कि क्या अभिलेख से ऐसी एक या अधिक परिस्थितियाँ उभरती हैं जो यह संकेत देती हैं कि जिस निर्णय को कदाचार के आरोप का आधार बनाया गया है, वह न्यायिक शक्ति का ईमानदारी से किया गया प्रयोग नहीं था।** कदाचार स्थापित करने के लिए साक्ष्य के रूप में पेश की गई परिस्थितियों की सावधानीपूर्वक छंटनी और मूल्यांकन किया जाना चाहिए। अनुशासनिक कार्यवाही के भय से ईमानदार और स्वतंत्र अधिकारी का मनोबल नहीं गिरना चाहिए। फिर भी, दूसरी ओर, कदाचार के मामलों से निपटने में समाज के प्रति जवाबदेही का एक महत्वपूर्ण तत्व शामिल है। एक ओर, जिला न्यायपालिका के निर्भीक और ईमानदार अधिकारियों को प्रेरित आलोचना और हमलों से बचाने में वास्तविक सार्वजनिक हित निहित है। समान रूप से, गलत कार्य के दोषी व्यक्ति को उसके कार्यों के लिए जिम्मेदार ठहराने में भी वास्तविक सार्वजनिक हित है। सार्वजनिक हित के किसी भी पहलू की उपेक्षा नहीं की जा सकती। न्याय प्रशासन की अखंडता को बनाए रखने के लिए दोनों ही अनिवार्य हैं।"
>
> (ज़ोर दिया गया)

33. जैसा कि ***आर.आर. पारेख (उपरोक्त)*** में निर्धारित किया गया है, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि कदाचार या बाहरी विचारों से प्रेरित होने का निष्कर्ष केवल इस परिकल्पना से नहीं निकाला जा सकता कि निर्णय त्रुटिपूर्ण है। यह माना गया है कि एक गलत निर्णय फिर भी सद्भावी निर्णय की भूल हो सकता है और अनवधानता, निर्णय की ईमानदार भूल के अनुरूप है। अंततः, फैसले की शुद्धता नहीं बल्कि संबंधित अधिकारी का आचरण ही निर्णायक होता है।

34. इस संबंध में इस न्यायालय द्वारा ***भारत संघ और अन्य बनाम के.के. धवन***[4] में की गई टिप्पणियों को स्मरण करना उचित है, जिसका अनुसरण ***पी.सी. जोशी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य***[5] में किया गया है। इस न्यायालय ने ***के.के. धवन (उपरोक्त)*** मामले में, उन विशिष्ट परिस्थितियों का दृष्टांत देते हुए जिनमें अनुशासनात्मक कार्रवाई शुरू की जा सकती है, सावधानी बरतने का भी निर्देश दिया था। ***के.के. धवन (उपरोक्त)*** में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि:

> "**28.** निश्चित रूप से, वह अधिकारी जो न्यायिक या अर्द्ध-न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करते समय लापरवाही या उतावलेपन से कार्य करता है अथवा किसी व्यक्ति को अनुचित लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से कार्य करता है, वह *एक न्यायाधीश के रूप में कार्य नहीं कर रहा होता है।* तदनुसार, प्रत्यर्थी के तर्क को खारिज किया जाता है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि वर्तमान मामले में, हमारा सरोकार प्रत्यर्थी के निर्णय की शुद्धता या वैधानिकता से

नहीं है, *बल्कि एक अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्यों के निर्वहन में प्रत्यर्थी के आचरण से है।* अधिनियम के तहत अपील या पुनरीक्षण में नौ निर्धारणों के संदर्भ में आदेशों की वैधानिकता पर प्रश्न उठाया जा सकता है। परंतु हमारे मन में कोई संदेह नहीं है कि सरकार आचरण नियमावली के उल्लंघन के लिए अनुशासनात्मक कार्रवाई करने से वर्जित नहीं है। अतः, हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि निम्नलिखित मामलों में अनुशासनात्मक कार्रवाई की जा सकती है:

(i) जहाँ अधिकारी ने ऐसी रीति से कार्य किया हो जिससे उसकी सत्यनिष्ठा, सद्भाव या कर्तव्य के प्रति निष्ठा की प्रतिष्ठा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो;
(ii) यदि प्रथम दृष्टया ऐसी सामग्री उपलब्ध हो जो उसके कर्तव्य निर्वहन में लापरवाही या कदाचार को प्रदर्शित करती हो;
(iii) यदि उसने ऐसी रीति से कार्य किया हो जो एक सरकारी सेवक के लिए अशोभनीय हो;
(iv) यदि उसने लापरवाही से कार्य किया हो या उन निर्धारित शर्तों की उपेक्षा की हो जो वैधानिक शक्तियों के प्रयोग के लिए अनिवार्य हैं;
(v) यदि उसने किसी पक्षकार को अनुचित लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से कार्य किया हो;
(vi) यदि वह भ्रष्ट मंशा से प्रेरित रहा हो, चाहे रिश्वत की राशि कितनी भी कम क्यों न हो, क्योंकि लॉर्ड कोक ने बहुत पहले कहा था कि "भले ही रिश्वत छोटी हो, फिर भी दोष बड़ा होता है"।

29. ऊपर सूचीबद्ध उदाहरण विस्तृत नहीं हैं। हालाँकि, हम यह भी जोड़ना चाहेंगे कि केवल तकनीकी उल्लंघन के लिए या केवल इसलिए कि आदेश त्रुटिपूर्ण है और कार्रवाई उपरोक्त सूचीबद्ध उदाहरणों के अंतर्गत नहीं आती है, अनुशासनात्मक कार्रवाई न्यायोचित नहीं है। यहाँ, हम सावधानी बरतने का संकेत देना चाहते हैं। प्रत्येक मामला तथ्यों पर निर्भर करेगा और इसके लिए कोई पूर्ण नियम प्रतिपादित नहीं किया जा सकता।"

35. इस न्यायालय ने यह निर्धारित किया है कि मात्र इसलिए कि कोई आदेश त्रुटिपूर्ण है, अनुशासनात्मक कार्यवाही उचित नहीं है और प्रत्येक मामला तथ्यों पर निर्भर करेगा तथा इसके लिए कोई पूर्ण नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता। विशेष रूप से उल्लेखनीय यह है कि यद्यपि ***के.के. धवन*** *(उपरोक्त)* के मामले [कंडिका 28 (iv)] में यह दर्शाया गया है कि वैधानिक शक्तियों के प्रयोग के लिए आवश्यक निर्धारित शर्तों की चूक के मामले, किसी विशिष्ट प्रकरण में अनुशासनात्मक जांच का आधार बन सकते हैं, तथापि यह कोई पूर्ण नियम नहीं है और प्रत्येक मामला तथ्यों पर निर्भर करेगा। जैसा कि ***आर.आर. पारेख*** *(उपरोक्त)* में अवलोकन किया गया था, अनुशासनात्मक प्राधिकारी को यह जांचना होगा कि क्या अभिलेख से ऐसी एक या अधिक परिस्थितियां उत्पन्न हुई हैं जो यह संकेत देती हैं कि निर्णय, जो कदाचार के आरोप का आधार है, न्यायिक शक्ति का ईमानदार प्रयोग नहीं था।

36. ***ईश्वर चंद जैन बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय एवं अन्य***[9] के मामले में, इस न्यायालय ने इस बात पर प्रकाश डाला कि यदि दुर्भावनापूर्ण या प्रेरित शिकायतों पर जांच शुरू की जाती है, तो विचारण न्यायपालिका की कार्यप्रणाली गंभीर रूप से प्रभावित होगी और कर्तव्यों का निडर निर्वहन एक हताहत बन जाएगा। ***ईश्वर चंद जैन (उपरोक्त)*** में इस न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी:

"**14. संविधान के तहत उच्च न्यायालय का अधीनस्थ न्यायपालिका पर नियंत्रण होता है। उस नियंत्रण का प्रयोग करते हुए, न्यायिक अधिकारियों का मार्गदर्शन और संरक्षण करना उसका संवैधानिक दायित्व है। मुफस्सिल न्यायालयों में एक ईमानदार और सख्त न्यायिक अधिकारी के विरोधी होने की संभावना रहती है। यदि न्यायिक आदेशों से संबंधित तुच्छ मामलों पर शिकायतें स्वीकार की जाती हैं, जिन्हें उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक पक्ष पर बरकरार रखा गया हो, तो कोई भी न्यायिक अधिकारी सुरक्षित महसूस नहीं करेगा और उसके लिए ईमानदार और स्वतंत्र तरीके से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना कठिन होगा। कानून के शासन के लिए एक स्वतंत्र और ईमानदार न्यायपालिका अपरिहार्य है। यदि न्यायिक अधिकारी तुच्छ मामलों पर शिकायत और जांच के निरंतर खतरे में रहेंगे और यदि उच्च न्यायालय गुमनाम शिकायतों को प्रोत्साहित करता है, तो अधीनस्थ न्यायपालिका स्वतंत्र और ईमानदार तरीके से न्याय प्रशासन नहीं कर पाएगी। इसलिए यह अनिवार्य है कि उच्च न्यायालय अनैतिक वकीलों और वादियों द्वारा की गई दुर्भावनापूर्ण या प्रेरित शिकायतों को नजरअंदाज करके अपने ईमानदार अधिकारियों की रक्षा के लिए कदम उठाए।** वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमारे मन में कोई संदेह नहीं है कि अपीलकर्ता के विरुद्ध बार एसोसिएशन द्वारा पारित प्रस्ताव पूरी तरह से अनुचित था और श्री मेहलावत एवं अन्य द्वारा की गई शिकायतें प्रेरित थीं, जो किसी भी श्रेय की पात्र नहीं थीं। सतर्कता न्यायाधीश ने भी जांच करने के बाद ऐसा कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया कि अपीलकर्ता किसी भ्रष्ट मंशा का दोषी था या उसने न्यायिक रूप से कार्य नहीं किया था। उसके विरुद्ध केवल इतना कहा गया था कि उसने स्थगन देने में अनुचित कार्य किया था।"

[जोर दिया गया]

37. इसी प्रकार के विचार ***रमेश चंद्र सिंह बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय व अन्य*** में व्यक्त किए गए थे, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया था:—

"**12. इस न्यायालय ने कई अवसरों पर अधीनस्थ न्यायपालिका के अधिकारियों के विरुद्ध मात्र इसलिए अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने की प्रथा को नामंजूर किया है क्योंकि उनके द्वारा पारित निर्णय/आदेश त्रुटिपूर्ण हैं। अपीलीय और पुनरीक्षण न्यायालयों की स्थापना की गई है और उन्हें ऐसे आदेशों को निरस्त करने की शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। उच्चतर न्यायालय अपील की सुनवाई के बाद निचली अदालतों के त्रुटिपूर्ण निर्णयों में संशोधन कर सकते हैं या उन्हें रद्द कर सकते हैं। न्यायिक आदेशों के आधार पर अनुशासनात्मक कार्रवाई करते समय, उच्च न्यायालय को अतिरिक्त सावधानी और सतर्कता बरतनी चाहिए।**"

"**17.** ***झुंजारराव भिकाजी नागरकर बनाम भारत संघ [(1999) 7 एससीसी 409 : 1999 एससीसी (एल एंड एस) 1299 : एआईआर 1999 एससी 2881]*** **में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी द्वारा क्षेत्राधिकार का गलत प्रयोग या कानून की भूल या कानून की गलत व्याख्या, अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का आधार नहीं हो सकती। बेशक, यदि न्यायिक अधिकारी ने ऐसा आचरण किया है जो उसकी प्रतिष्ठा, सत्यनिष्ठा या सद्भावना पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, या यदि प्रथम दृष्टया ऐसी सामग्री उपलब्ध है जो उसके कर्तव्यों के निर्वहन में लापरवाही या कदाचार को दर्शाती है, या उसने किसी पक्ष को अनुचित लाभ पहुँचाने के लिए कार्य किया है या भ्रष्ट उद्देश्य से**

प्रेरित होकर आदेश पारित किया है, तो उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 235 के तहत अपनी शक्ति के आधार पर अपने पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकता है। बहरहाल, ऐसी परिस्थितियों में यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि सभी स्तरों के न्यायाधीशों को बिना किसी डर या पक्षपात के न्याय प्रशासन करना होता है। एक प्रभावी न्यायिक प्रणाली के लिए निर्भीकता और न्यायिक स्वतंत्रता का अनुरक्षण अत्यंत आवश्यक है। अधीनस्थ न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध प्रतिकूल टिप्पणी करना और उन्हें कठोर अनुशासनात्मक कार्यवाही के अधीन करना अंततः जमीनी स्तर पर न्यायिक प्रणाली को क्षति पहुँचाएगा।"

38. न्यायिक अधिकारियों से निपटने के लिए उच्च न्यायालय के पास उपलब्ध विभिन्न विकल्पों पर प्रकाश डालते हुए और अनुशासनात्मक उपायों का सहारा लेने से पूर्व कदाचार तथा बाहरी प्रभावों या अवैध परितोषण को स्पष्ट रूप से स्थापित करने की आवश्यकता पर जोर देते हुए, इस न्यायालय ने ***कृष्ण प्रसाद वर्मा बनाम बिहार राज्य व अन्य***[9] में निम्नलिखित बातें कहीं:—

> **"16.** हालांकि, हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि हम किसी भी तरह से यह संकेत नहीं दे रहे हैं कि यदि कोई न्यायिक अधिकारी गलत आदेश पारित करता है, तो कोई कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए। यदि कोई न्यायिक अधिकारी ऐसे आदेश पारित करता है जो स्थापित कानूनी मानदंडों के विरुद्ध हैं, लेकिन ऐसे आदेशों को पारित करने में किसी भी बाह्य प्रभाव का कोई आरोप नहीं है, तो उच्च न्यायालय को जो उचित कार्रवाई करनी चाहिए, वह यह है कि ऐसी सामग्री को प्रशासनिक पक्ष पर दर्ज किया जाए और उसे संबंधित न्यायिक अधिकारी के सेवा अभिलेख में रखा जाए। संबंधित न्यायिक अधिकारी की करियर प्रगति पर विचार करते समय इन मामलों को ध्यान में रखा जा सकता है। एक बार जब गलत आदेश पर संज्ञान ले लिया जाता है और वे सेवा अभिलेख का हिस्सा बन जाते हैं, तो उन्हें चयन ग्रेड, पदोन्नति आदि से इनकार करने के लिए ध्यान में रखा जा सकता है, और यदि गलत या अवैध आदेशों का निरंतर प्रवाह जारी रहता है, तो उचित कार्रवाई नियमों के अनुसार न्यायिक अधिकारी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने की होगी। **हम पुनः दोहराते हैं कि जब तक कदाचार, बाह्य प्रभाव, किसी भी प्रकार के परितोषण आदि के स्पष्ट आरोप न हों, तब तक केवल इस आधार पर अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू नहीं की जानी चाहिए कि न्यायिक अधिकारी द्वारा गलत आदेश पारित किया गया है या केवल इस आधार पर कि न्यायिक आदेश त्रुटिपूर्ण है।"**
>
> [ज़ोर दिया गया]

39. केवल इसलिए कि एक भिन्न निष्कर्ष संभव था, यह कदाचार का सूचक नहीं है; इस तथ्य को ***पी.सी. जोशी*** *(उपरोक्त)* के मामले में रेखांकित किया गया था।

> "**7.** वर्तमान मामले में, यद्यपि जाँच अधिकारी द्वारा विस्तृत जाँच की गई है, किंतु अपीलार्थी द्वारा न्यायिक पक्ष पर पारित किए गए प्रत्येक आदेश की केवल इस दृष्टि से संवीक्षा करने के अतिरिक्त कि एक भिन्न निष्कर्ष निकाला जा सके, नाममात्र की भी कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। तथ्यों के किसी दिए गए समूह पर एक भिन्न निष्कर्ष पर पहुँचने की संभावना होना, किसी न्यायिक अधिकारी को केवल उसी कारण से एक विशिष्ट दृष्टिकोण अपनाने और वह भी कथित कदाचार के लिए दोषी ठहराने का कोई आधार नहीं है। **जाँच अधिकारी को ऐसी कोई अन्य सामग्री नहीं मिली है, जो उनकी प्रतिष्ठा, सत्यनिष्ठा, सद्भाव या कर्तव्य के प्रति निष्ठा पर**

प्रतिकूल प्रभाव डालती हो, या यह दर्शाती हो कि वह किसी भ्रष्ट मंशा से प्रेरित थे। अधिक से अधिक, यह कहा जा सकता है कि अपीलार्थी द्वारा लिया गया दृष्टिकोण उचित या सही नहीं है, किंतु उन पर ऐसे किसी उद्देश्य या बाह्य कारकों का आरोप नहीं लगाया जा सकता कि उन्होंने उस रीति से कार्य किया था। यदि प्रत्येक मामले में जहाँ अधीनस्थ न्यायालय का आदेश त्रुटिपूर्ण पाया जाता है, अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जाने लगे, तो अधीनस्थ न्यायपालिका का विश्वास डगमगा जाएगा और अधिकारी निरंतर इस भय में रहेंगे कि उनके निर्णय के कारण उन्हें अनुशासनात्मक जाँच का सामना न करना पड़ जाए, और इस प्रकार न्यायिक अधिकारी स्वतंत्र या निर्भीक होकर कार्य नहीं कर पाएंगे। वास्तव में, के.के. धवन मामले [(1993) 2 एससीसी 56: 1993 एससीसी (एल एंड एस) 325: (1993) 24 एटीसी 1] और ए.एन. सक्सेना मामले [(1992) 3 एससीसी 124: 1992 एससीसी (एल एंड एस) 861: (1992) 21 एटीसी 670] में सावधानी बरतने के निर्देश दिए गए हैं कि केवल इसलिए कि आदेश दोषपूर्ण है या की गई कार्यवाही भिन्न हो सकती थी, किसी न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करना न्यायोचित नहीं है। ऐसी चेतावनी के बावजूद, यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि उच्च न्यायालय ने इस मामले में अपीलार्थी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का विकल्प चुना।"

40. उपरोक्त सिद्धांतों को वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए, हम पाते हैं कि अपीलकर्ता को केवल कुछ जमानत आदेश पारित करने के आधार पर कदाचार का दोषी ठहराया गया है, जबकि इसके अतिरिक्त कोई अन्य साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। हम ऐसा निम्नलिखित कारणों से कह रहे हैं:

(i) जयपाल मेहता द्वारा मूल रूप से दर्ज की गई शिकायत मुख्य्य रूप से स्टेनोग्राफर अनिल जोशी के विरुद्ध थी, जो अपीलकर्ता के खरगोन में पदभार ग्रहण करने से बहुत पहले से वहां कार्यरत था।

(ii) शिकायत में न तो कोई विशिष्ट विवरण दिया गया था और न ही किसी न्यायिक आदेश का उल्लेख किया गया था। यह प्रकृति में सामान्य थी।

(iii) जांच के दौरान शिकायतकर्ता का परीक्षण नहीं किया गया। आरोप के समर्थन में परीक्षित गवाह गेंदालाल चौहान ने आरोपों का समर्थन नहीं किया।

(iv) उन सभी 18 जमानत आदेशों में उपस्थित होने वाले अभियोजक का बचाव पक्ष की ओर से परीक्षण किया गया, और उन्होंने भी यह गवाही दी कि राज्य ने जमानत देने वाले आदेशों को स्वीकार कर लिया था और उच्च न्यायालय में उन्हें चुनौती नहीं दी थी। उन्होंने स्पष्ट रूप से बयान दिया कि आदेश पूर्णतः उचित थे और उचित आधारों पर पारित किए गए थे।

(v) चार आदेशों के अवलोकन से पता चलता है कि उनमें कारण दिए गए हैं, भले ही आबकारी अधिनियम की धारा 59-क (2) का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। एक जमानत आदेश में, अपीलकर्ता ने चालान पेश किए जाने और विचारण में लगने वाले लंबे समय की संभावना का उल्लेख किया है। वास्तव में, उक्त आदेश में अपीलकर्ता ने अनुच्छेद 21 पर भरोसा किया है, हालांकि उसने इसका स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया है। अन्य जमानत आदेशों में, वह आवेदकों के ग्रामीण किसान होने और उनके फरार होने की संभावना न होने आदि का उल्लेख करता है।

(vi) अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि उन जमानत आदेशों को पारित करने में कोई बाह्य विचार सक्रिय थे। यह परिकल्पना केवल इस आधार पर तैयार की गई थी कि आदेश में वैधानिक प्रावधान का स्पष्ट संदर्भ नहीं दिया गया था।

(vii) यह निष्कर्ष कि 14 अन्य आदेशों में उन्होंने आबकारी अधिनियम की धारा 59-क (2) का संदर्भ दिया था, स्वतः ही प्रश्नगत चार जमानत आदेशों को पारित करने में कदाचार का अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त नहीं है।

(viii) यह एक खतरनाक प्रस्ताव होगा कि उन निर्णयों और आदेशों को स्वतः ही बेईमानीपूर्ण निर्णय मान लिया जाए जिनमें वैधानिक प्रावधानों का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है।

41. माननीय उच्च न्यायालय ने आदेश में हस्तक्षेप न करके त्रुटि की है। श्री अर्जुन गर्ग द्वारा इस तर्क के साथ आक्षेपित आदेश को बनाए रखने का एक साहसी प्रयास किया गया कि रिट न्यायालय या यह न्यायालय, जांच रिपोर्ट पर एक अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य नहीं कर सकता है और एकमात्र विचारणीय बिंदु यह था कि क्या जांच निष्पक्ष रूप से संचालित की गई थी। हम उक्त तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। हमारी राय में, ऊपर बताए गए कारणों से, जांच रिपोर्ट के निष्कर्ष विपरीत हैं और रिकॉर्ड पर मौजूद निष्कर्षों द्वारा समर्थित नहीं हैं। हम स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष दर्ज करते हैं कि उपलब्ध सामग्री के आधार पर, कोई भी तर्कसंगत व्यक्ति उस निष्कर्ष तक नहीं पहुँच सकता था जिस पर जांच अधिकारी पहुँचा है।

42. ***योगिनाथ डी. बागड़े बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य***[9] में, न्यायमूर्ति सगीर अहमद ने इस सिद्धांत की स्पष्ट रूप से व्याख्या की है:-

> "51. अंततः श्री हरीश एन. साल्वे द्वारा यह तर्क दिया गया कि यह न्यायालय उन साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन नहीं कर सकता जिनका पहले ही जांच अधिकारी और साथ ही अनुशासनिक समिति द्वारा सूक्ष्म परीक्षण किया जा चुका है। यह तर्क दिया गया है कि उच्च न्यायालय या यह न्यायालय, संविधान के अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 32 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में, विभागीय जांच या विचारण में अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं कर सकता है और साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करना इस न्यायालय के लिए खुला नहीं है। श्री साल्वे द्वारा प्रस्तुत किया गया यह प्रस्ताव अत्यंत व्यापक है और इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। **कानून सुस्थापित है कि यदि निष्कर्ष विपरीत हैं और अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं हैं, या विभागीय विचारण में दर्ज किए गए निष्कर्ष ऐसे हैं जहाँ तक कोई भी तर्कसंगत व्यक्ति नहीं पहुँच सकता था, तो उच्च न्यायालय और इस न्यायालय के लिए मामले में हस्तक्षेप करना खुला होगा। कुलदीप सिंह बनाम पुलिस कमिश्नर [(1999) 2 एससीसी 10 : 1999 एससीसी (एलएंडएस) 429 : जेटी (1998) 8 एससी 603] में, इस न्यायालय ने पूर्व के निर्णयों- नंद किशोर प्रसाद बनाम बिहार राज्य [(1978) 3 एससीसी 366: 1978 एससीसी (एल एंड एस) 458: एआईआर 1978 एससी 1277: (1978) 3 एससीआर 708], आंध्र प्रदेश राज्य बनाम रामा राव [एआईआर 1963 एससी 1723: (1964) 3 एससीआर 25], सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम प्रकाश चंद जैन [एआईआर 1969 एससी**

983: (1969) 2 एलएलजे 377], भारत आयरन वर्क्स बनाम भगुभाई बालुभाई पटेल [(1976) 1 एससीसी 518: 1976 एससीसी (एल एंड एस) 92: एआईआर 1976 एससी 98: (1976) 2 एससीआर 280] और राजिंदर कुमार किंद्रा बनाम दिल्ली प्रशासन [(1984) 4 एससीसी 635: 1985 एससीसी (एल एंड एस) 131: एआईआर 1984 एससी 1805: (1985) 1 एससीआर 866] पर भरोसा करते हुए यह निर्धारित किया कि यद्यपि न्यायालय विभागीय जांच में अनुशासनिक प्राधिकारी या जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों पर अपील में नहीं बैठ सकता है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि न्यायालय किसी भी परिस्थिति में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। यह देखा गया कि संविधान के तहत उच्च न्यायालय और इस न्यायालय को उपलब्ध न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति में विभागीय जांच भी शामिल है और न्यायालय वहां निष्कर्षों में हस्तक्षेप कर सकते हैं यदि निष्कर्षों के समर्थन में कोई साक्ष्य नहीं था या दर्ज किए गए निष्कर्ष ऐसे थे जिन तक कोई सामान्य विवेकशील व्यक्ति नहीं पहुँच सकता था या निष्कर्ष विपरीत थे।"

(ज़ोर दिया गया)

43. उपरोक्त कारणों से, अपील स्वीकार की जाती है। निष्कासन का आदेश दिनांक 02.09.2015, अपीलीय प्राधिकारी का आदेश दिनांक 17.03.2016 और उच्च न्यायालय का आक्षेपित आदेश, सभी को निरस्त किया जाता है। अपीलार्थी को उसकी अधिवर्षिता की सामान्य आयु प्राप्त करने तक सेवा में निरंतर माना जाएगा। चूंकि अपीलार्थी को उसकी किसी गलती के बिना सेवा से बाहर रखा गया है, हमारी राय है कि अपीलार्थी को सभी पारिणामिक लाभों के साथ पूर्ण पिछला वेतन दिया जाना चाहिए। मौद्रिक लाभ आज से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर 6 प्रतिशत प्रति वर्ष के ब्याज के साथ जारी किए जाएं। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

44. इस निर्णय की एक प्रति देश के संबंधित उच्च न्यायालयों के सभी रजिस्ट्रार जनरलों को प्रेषित की जाए, ताकि वे उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों का ध्यान इस ओर आकर्षित कर सकें।

निर्णय

न्यायमूर्ति श्री जे.बी. पारदीवाला

1. मेरे सम्मानित भ्राता न्यायमूर्ति के.वी. विश्वनाथन ने एक अत्यंत उत्कृष्ट निर्णय लिखा है। यह निर्णय जिला न्यायपालिका के न्यायिक अधिकारियों को, बिना किसी अतिरिक्त साक्ष्य के, केवल जमानत आदेश पारित करने में विवेकाधिकार के कथित गलत प्रयोग के आधार पर विभागीय कार्यवाही का पात्र बनने से बचाने में बहुत सहायक सिद्ध होगा। भ्राता विश्वनाथन ने इसे अत्यंत संक्षिप्त और सटीक रूप में व्यक्त किया है कि यदि किसी न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध कदाचार की शिकायत *प्रथम दृष्ट्या* सत्य पाई जाती है, तो ऐसी परिस्थितियों में अनुशासनात्मक कार्यवाही की जानी चाहिए और यदि आरोप सिद्ध हो जाते हैं, तो कोई उदारता नहीं बरती जानी चाहिए। उचित मामले में, न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध आपराधिक अभियोजन भी संस्थित किया जा सकता है। न्यायपालिका से कलंकित न्यायाधीशों को बाहर निकालने के लिए ऐसी कार्रवाई आवश्यक है। यह कहना अनावश्यक है कि किसी भी स्तर पर न्यायपालिका में भ्रष्टाचार असहनीय है, क्योंकि भ्रष्टाचार न्याय प्रशासन के मूल स्वरूप को गंभीर रूप से कमजोर करता है और कानून के शासन में जनता के विश्वास को कम करता है। हालांकि, उच्च न्यायालय, जिसमें पर्यवेक्षी नियंत्रण निहित है, को यह ध्यान रखना चाहिए कि जिला न्यायपालिका का एक न्यायिक अधिकारी प्रायः तनावपूर्ण वातावरण में कार्य करता

है। जमानत देने में केवल एक गलत आदेश या विवेकाधिकार का गलत प्रयोग, बिना किसी अन्य पुष्ट साक्ष्य के, विभागीय कार्यवाही शुरू करने का आधार नहीं हो सकता।

2. मात्र संदेह के आधार पर विभागीय कार्यवाही शुरू करना उन प्राथमिक कारणों में से एक है, जिसके कारण विचारण न्यायालय के न्यायाधीश जमानत देने के प्रयोजन हेतु विवेकाधिकार का प्रयोग करने में संकोच करते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए कि विचारण न्यायालय के न्यायाधीश के मन में किसी प्रशासनिक कार्रवाई के छिपे हुए भय के कारण, कानून के सिद्धांतों के भीतर आने वाले एक सुपात्र मामले में भी जमानत देने से इनकार कर दिया जाए। यही कारण है कि उच्च न्यायालयों में जमानत आवेदनों की बाढ़ आई हुई है। यही स्थिति उच्चतम न्यायालय की भी है। समय के साथ, विचारण न्यायालय के न्यायाधीशों ने जमानत से संबंधित मामलों में अपने गंभीर न्यायिक कार्य और उत्तरदायित्व के निर्वहन से बचने की प्रवृत्ति प्रदर्शित की है। जिला न्यायपालिका के न्यायालय भारत में न्याय वितरण प्रणाली के संचालन के लिए आवश्यक शक्तियों का प्रयोग करते हैं और जब उच्चतर न्यायालयों द्वारा उनकी स्वायत्तता से समझौता किया जाता है तथा न्यायिक कर्तव्यों पर भय हावी हो जाता है, तो लोकतंत्र और कानून के शासन को क्षति पहुँचती है।

3. लोकतंत्र के कामकाज के लिए, बिना किसी भय या पक्षपात के न्याय प्रदान करने वाली एक स्वतंत्र न्यायपालिका सर्वोपरि है। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा ***एम.एस. बिन्द्रा बनाम यूनियन, (1998) 7 एससीसी*** **310** में अभिनिर्धारित किया गया है की साक्ष्यों/सामग्रियों का मूल्यांकन करते समय प्राधिकारी को उस प्रतिष्ठा की पूरी तरह से अनदेखी नहीं करनी चाहिए जो अधिकारी ने हाल के समय तक बनाए रखी थी। सूक्ति *"नेमो फिरुत रेपेंटे तुर्पिसिमस"* (कोई भी व्यक्ति अचानक से बेईमान नहीं हो जाता) अपवादरहित नहीं है, लेकिन फिर भी मानव आचरण को आंकने के लिए, विशेष रूप से प्रशासनिक कानून के क्षेत्र में, एक हितकारी मार्गदर्शिका है। प्राधिकारियों को उस समग्र मूल्यांकन के प्रति अपनी आँखें पूरी तरह बंद नहीं करनी चाहिए, जो हाल के दिनों में उन लोगों द्वारा किया गया था जो पहले उस अपचारी अधिकारी का पर्यवेक्षण कर रहे थे। किसी अधिकारी को "संदिग्ध सत्यनिष्ठा" के दलदल में धकेलने के लिए यह पर्याप्त नहीं है कि संदेह केवल एक मात्र कयास या अंतर्ज्ञान पर आधारित हो। वह संदेह इस प्रकृति का होना चाहिए जिसे उपलब्ध सामग्री के आधार पर एक तर्कसंगत व्यक्ति द्वारा उचित और सचेत रूप से स्वीकार किया जा सके। मात्र संभावना शायद ही यह मानने के लिए पर्याप्त है कि ऐसा हुआ होगा। किसी तर्कसंगत व्यक्ति के लिए उस संभावना के संबंध में संदेह करने हेतु संभाव्यता की प्रधानता होनी चाहिए। केवल तभी किसी अधिकारी पर 'संदिग्ध सत्यनिष्ठा' का ठप्पा लगाने का औचित्य बनता है।

मामले का परिणाम: अपील स्वीकार की गई।

† शीर्ष टिप्पणियाँ तैयार की गयीं: द्वारा दिव्या पांडेय

---

* लेखक

(प्रतीक राय द्वारा अनुवादित)

1 (2020) 11 एससीसी 760
2 (2022) 13 एससीसी 1
3 (2016) 14 एससीसी 1
4 (1993) 2 एससीसी 56
5 (2001) 6 एससीसी 491
6 (1988) 3 एससीसी 370
7 (2007) 4 एससीसी 247
8 (2019) 10 एससीसी 640
9 (1999) 7 एससीसी 739